संपादकीय

हड़बड़ी में सुधारक !

1990 के बाद से दुनिया भर में शुरू हुए आर्थिक परिवर्तनों से शिक्षा अछूती नहीं रही। भारत में पिछले करीब दो दशकों से आरंभ हुए आर्थिक परिवर्तनों ने भारतीय शैक्षिक परिदृश्य को लगभग पूरी तरह बदलकर रख दिया है। इन परिवर्तनों की व्याख्या दो विरोधी नजरियों से की जा सकती है। एक तरफ, पिछले दो दशकों में सभी को शिक्षा मुहैया कराने के अभूतपूर्व प्रयास हुए हैं और इसमें सरकारी एवं गैर-सरकारी प्रयासों की अहम भूमिका रही है, सरकारों ने सभी को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा उपलब्ध करवाने के लिए राज्य और राष्ट्रीय स्तर के बड़े कार्यक्रमों को क्रियान्वित किया है। इसके चलते पिछले दो दशकों में स्कूलों की संख्या में आशातीत बढ़ोतरी हुई है तथा स्कूल की पहुंच दूर-दराज तक बनी है। दूसरी तरफ, कहा जा सकता है कि इन तमाम प्रयासों के बावजूद हमारी स्कूली व्यवस्था यथावत और बेहतरी की तमाम कोशिशों से अछूती बनी हुई है। दुनिया भर में हो रहे गंभीर शैक्षिक विमर्श के बावजूद यह विमर्श शैक्षिक व्यवहार में फलित होता नहीं दिखता। नव्वे के दशक में आकार ग्रहण कर रहे शैक्षिक विमर्श में शिक्षा के जरिए सामाजिक न्याय, समता, धर्मनिरपेक्षता आदि मूल्यों की स्थापना और निर्णय प्रक्रिया में सभी की भागीदारी तथा विकेन्द्रीकरण जैसे मूल्यों पर हमारे यहां दिया जा रहा खासा जोर अब या तो धीमा पड़ गया है या विचार विमर्श के दायरे से लगभग बाहर होता जा रहा है। भारतीय शिक्षा के बारे में ये दोनों नजरिए एक साथ सही बैठते नजर आते हैं।

शिक्षा के प्रसार के राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय दबावों से तमाम विकासशील देशों में पैदा हुई हलचल से शिक्षा के क्षेत्र में सरकारी और गैर-सरकारी प्रयासों को बढ़ावा मिला है। इन प्रयासों से शिक्षा जगत को कितना फायदा हुआ है, इसका मूल्यांकन तो भविष्य में होगा लेकिन यह सही है कि पिछले दो दशकों की इस हलचल से हमारे यहां बहुत से 'शिक्षा सुधारकों' का जन्म हुआ है। ये सुधारक भांति-भांति के हैं और इनकी विचारधारा भी अलग-अलग है। कुछ सुधारक इस देश की मिट्टी में पैदा हुए हैं तो कुछ विदेश के ख्यातनाम विश्वविद्यालयों से डिग्रियां लेकर मैदान में उतरे हैं। कुछ ने स्कूलों के साथ काम किया है तो कुछ के लिए स्कूल सुधार की योजना के लिए किसी खास अनुभव और समझ की जरूरत मालूम नहीं होती। कुछ सरकार के हाथों को मजबूत करना चाहते हैं तो कुछ सरकार के साथ संभावनाओं को निराशा के साथ देखते हैं। लेकिन सभी गर्हित में पड़ी हमारी स्कूली व्यवस्था को बेहतर बनाने में जुटे हैं ! ये सभी दुनिया को बदलना चाहते हैं और इसके लिए अब मंत्र की तलाश कर रहे हैं।

इन सुधारकों ने शिक्षा की 'बेहतरी' के लिए तरकीबें खोज निकाली हैं। कुछ सुधारकों ने यह तरकीब खोज निकाली है कि शिक्षा में सुधार के लिए बाजार की तर्ज पर प्रतिस्पर्द्धा को बढ़ावा दिया जाना चाहिए और वे पूरे जोर से इस विचार के प्रचार-प्रसार में जुटे हैं। वे मानते हैं कि बच्चे की शिक्षा का खर्च तो सरकार को ही उठाना चाहिए लेकिन सरकारी अथवा निजी स्कूल में से कोई भी स्कूल चुनने की आजादी माता-पिता के पास होनी चाहिए। कुछ सुधारक सभी को 'गुणवत्तापूर्ण' शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए सस्ते स्कूलों के विकल्प खड़े करने की पैरवी में जुटे हैं तथा शिक्षा और मजदूरी के भेद को पाटते हुए अपने 'गणितीय ज्ञान' से शिक्षा की बेहतरी करना चाहते हैं। इनका पूरा जोर शिक्षा प्रक्रियाओं में बेहतरी के बजाय संरचनात्मक सुधारों पर केन्द्रित है। कुछ सुधारकों को सरकार कुछ अधिक प्रिय हो गई है ! वे सरकार का विरोध करते-करते अब सरकार के पक्ष में हो गए हैं। उन्हें हर सूरत में सरकार ही उम्मीद की किरण नजर आने लगी है। वे सरकार के साथ काम करने के किसी मौके को हाथ से नहीं जाने देना चाहते। अब उन्हें पहले की तरह सरकारी नीतियों और निर्णयों में राजनैतिक दुश्चक्र नहीं नजर आता। कुछ सुधारक बिना सरकारों की चिन्ता किए 'अपने हित में सबका हित' ढूढ़ने में लगे हैं। कुछ सुधारक सूचना प्रौद्योगिकी के जरिए जेण्डर, गरीबी, गैर-बराबरी इत्यादि तमाम सामाजिक विषमताओं को मिटा देने का मंत्र जाप कर रहे हैं

तो कुछ इंटरनेट पर बहसें आयोजित कर परिवर्तन की अलख जगाने में जुटे हैं। कुछ सुधारक बिना फील्ड अनुभव और शिक्षा की समझ के आर्थिक संसाधनों के बलबूते अकादमिक दक्षता हासिल करने की कवायद कर रहे हैं और बड़े स्तर पर कार्यक्रमों को अंजाम देने के सपने देख रहे हैं।

दरअसल, इन सभी को देखकर लगता है कि ये सभी सुधारक दुनिया को जल्दी से बदल देने की हड़बड़ी में आ गए हैं। इनकी हड़बड़ी को देखकर कभी-कभी संशय पैदा होता है। इनसे यह सवाल नाजायज नहीं होगा कि ये शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को कैसे समझते हैं ? शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन की बातें तो दीगर हैं, इनसे यह जानने की इच्छा होती है कि वास्तव में ये व्यक्ति के अंदर घटित होने वाली परिवर्तन की प्रक्रिया को कैसे समझते हैं ? या तो ये सुधारक इतने भोले हैं कि ये इन सवालों को नहीं समझते। और यदि समझते हैं तो फिर इनकी हड़बड़ी का क्या कारण है ? इन सुधारकों को नासमझ मानना भूल हो सकती है क्योंकि इनका अनुभव राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का है और इन्हें इस बात का अंदाजा भी है कि हवा किस दिशा में बह रही है। लेकिन सवाल है कि इनका एजेण्डा क्या है ?

इन सुधारकों के एजेण्डा का सवाल राजनैतिक सवाल हैं। जैसा कि इस अंक में शामिल लेख 'शिक्षा और राजनीति' में डियरडेन कहते हैं कि कोई भी निर्णय राजनीति से परे नहीं होता। तो फिर इनकी राजनीति क्या है ? अनेक बार लगता है कि ये सुधारक शिक्षा की राजनीति को अनदेखा करते हुए मिथ्या चेतना के शिकार हो गए हैं और यह भूल गए हैं कि इनके द्वारा पैरवी किए जा रहे विचारों से भावी समाज की क्या तस्वीर बनेगी और यह भी भूल गए हैं कि इनकी विचारधारा किस तरह समाज के प्रभुत्वशाली वर्ग के हितों को साधने में मदद करेगी। अनेक बार यह लगता है कि इनके स्वयं के हित इन पर इस कदर हावी हो गए है कि येनकेन प्रकारेण इनके हित साधन ही सर्वोपरी हो गए हैं, बिना इस बात की परवाह किए कि इनके विचारों का परिणाम क्या होने वाले हैं। कभी-कभी लगता है कि इन सुधारकों का सारा जोर अपना परचम फैराने पर लग गया है। परचम फैराने की होड़ में ये यह भी भूल गए हैं कि शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन हड़बड़ी में घटित होने वाली चीजें नहीं हैं और इन्हें आर्थिक सत्ता के बल पर भी अर्जित नहीं किया जा सकता।

लेकिन सुधारकों की इस मुहिम ने शिक्षा को नाजुक मोड़ पर लाकर खड़ा कर दिया है। सुधारकों की सरपट दौड़ ने पिछले दशकों में न सिर्फ शैक्षिक विमर्श को भौंथरा किया है बल्कि शिक्षा के जरिए सामाजिक परिवर्तन के लिए जरूरी मूल्यों को भी उसमें से गायब कर दिया है। ये सभी सुधारक समझते हैं कि कुछ कौशलों या साक्षरता के जरिए समाज को विकास के पथ पर ले जाया जा सकता है और ये ही सामाजिक परिवर्तन के सही औजार हैं। इसके लिए इन्होंने एक नई तरह की शब्दावली की रचना कर ली है जो 'सामाजिक सशक्तिकरण' जैसे सुनहरे मुहावरों से ललचाती है।

सुधारकों की इस भीड़ द्वारा गढ़ी जा रही सुधार की इन तरकीबों से शिक्षा का कुछ भला होने वाला नहीं है। इन सुधारकों को यह समझना चाहिए कि शिक्षा की किसी भी योजना को जल्दबाजी में अंजाम नहीं दिया जा सकता। शैक्षिक योजनाएं दीर्घकालिक योजनाएं होती हैं जिनमें धैर्य के साथ-साथ भावी समाज के स्वप्न और आदर्शों की जरूरत होती है। ये स्वप्न और आदर्श तात्कालिक जरूरतों के पीछे भागते रहने से पूरे नहीं होते और न ही तात्कालिक जरूरतों की अनदेखी करने से ही अर्जित हो सकते हैं। यदि समाज को किसी सही दिशा में ले जाना है तो इसके लिए शिक्षा का एक संतुलित नजरिया विकसित करने की जरूरत है। क्योंकि शिक्षा व्यक्ति और समाज के निर्माण के लिए चलने वाली प्रक्रिया है। इसे मानने में कोई एतराज नहीं होना चाहिए कि शिक्षा व्यक्तिओं को बेहतर रोजगार उपलब्ध करवाने में मदद करनी चाहिए लेकिन शिक्षा की भूमिका को सिर्फ रोजगार तक ही सीमित कर देने के अपने खतरे हैं।

शिक्षा समाज को तभी दिशा दे सकती है जब एक आदर्श समाज का सपना देखा जाए या भावी समाज के लिए कोई यूटोपिया रचा जाए। इसलिए शिक्षा के इन सुधारक बिना हड़बड़ी के बेहतर समाज का सपना संजोएं, धैर्य रखें और लम्बे समय की कुछ योजनाएं बनाएं; तभी जाकर ये समाज में अपना सार्थक योगदान दे पाएंगे। ◆